Golden Research Thoughts
ISSN 2231-5063
Impact Factor : 2.2052(UIF)
Volume-3 | Issue-3 | Sept-2013
Available online at www.lbp.world

GRT

संगीत संस्थानों के उद्‌गम एवं विकास का इतिहास

प्रो. मृत्युंजय अगड़ी
अध्यक्ष, स्नातकोत्तर संगीता विभाग, कर्नाटक विश्वविद्‌यालय धारवाड.

प्रस्तावना :

स्वातंत्र्योत्तर युग भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से स्वर्ण युग कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। जिसका श्रेय इस काल में स्थापित विभिन्न संगीत संस्थानों को जाता है। आजकल 'संस्था' और 'संस्थान' दो शब्द प्रचार में हैं। हिन्दी पर्यायवाची कोश में 'संस्था' शब्द के लिए परिषद, प्रतिष्ठान, व्यवस्था-संगठन, संघ, सभा, संस्थान आदि पर्यायवाची शब्दों को स्थान दिया गया है।'न्दी पर्यायवाची कोश में 'संस्थान' के लिए प्रतिष्ठान, संस्था, सार्वजनिक संस्था आदि पर्यायवाची शब्द दिए गए हैं। इस प्रकार 'संस्था' और 'संस्थान' के जो समानार्थी शब्द पर्यायवाची कोश से प्राप्त हुए उसके आधार पर इन दोनों शब्दों को पर्यायवाची शब्द कहा जा सकता है।

समाजशास्त्रीय अर्थ में 'संस्था' का सम्बन्ध व्यक्तियों के समूह से नहीं होता अपितु समाज द्‌वारा मान्य उन पद्धतियों से होता है जिनके द्‌वारा हम अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। संस्था के समाजशास्त्रीय अर्थ को बड़े सरल और स्पष्ट रूप से समझाते हुए सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ने लिखा है कि मानव समाज के कुछ समान हित और कुछ विशेष हित (Particular interests) होते हैं। समान हितों को दृष्टि में रखकर जो संगठन बनते हैं वे 'समिति' कहलाते हैं। परंतु इन हितों, स्वार्थों और उद्देश्यों को पाने के लिए, इन्हें कागज पर ही न रखकर क्रिया में उतारने तथा मूर्त रूप देने के लिए कुछ साधनों का आश्रय लिया जाता है तथा कुछ तरीके, प्रणालियाँ अथवा मार्ग निकाले जाते हैं। इन विशेष हितों को पूर्ण करने के लिए जिन तरीकों, साधनों या प्रणालियों को अपनाया जाता है वही संस्थाओं को रूप प्रदान करती हैं। इस प्रकार संगीत के प्रति अनुराग रखने वाले, संगीत को अपनी आजीविका बनाने वाले, संगीत के प्रति समर्पित कलाकार, शास्त्रकार, संगीतज्ञ तथा संगीत को अपना जीवनाधार बनाने वालों के विशेष हितों को पूर्ण करने की भावना से निर्मित या संगठित समुदायों को ही संगीत संस्था एवं संगीत संस्थान की संज्ञा दी जा सकती है।

स्वाधीनता उपरांत संगीत संस्थानों का व्यापक विकास हुआ और शास्त्रीय संगीत के प्रचार-प्रसार के मार्ग खुले। इन संगीत संस्थानों का परिचय प्राप्त करने से पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि हम भारतवर्ष के संगीत शिक्षण संस्थाओं से संबंधित प्राचीन इतिहास पर एक दृष्टि डाल लें क्योंकि आधुनिक युग में प्रचलित, संगीत की संस्थागत शिक्षण प्रणाली, जो पाश्चात्य शिक्षण प्रणाली के प्रभाव में विकसित हुई, वह हमारे देश की प्रचलित प्राचीन शालेय शिक्षण व्यवस्था की ही देन है। यह गुरू-शिष्य परंपरा पर आधारित थी जिसका एक भव्य इतिहास है।

प्राचीन काल में संगीत शालेय शिक्षण एवं गुरू-शिष्य परंपरा :

भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही संगीत के शिक्षण हेतु विभिन्न संगीत शालाओं अर्थात शालेय शिक्षण व्यवस्था का अत्यधिक प्रचलन देखने को मिलता है। संगीत प्रयोगशील तथा प्रयोगजीवी कला है और इस कला का माध्यम ध्वनिनाद है, जो 'श्रवण-बोधी' रहता है इसलिए इस कला को 'श्रवणविद्‌या' कहा जाता है क्योंकि संगीत शिक्षा श्रवण और अनुकरण अर्थात प्रयोग द्‌वारा हो प्राप्त की जा सकती है इसलिए इस शिक्षा की प्राप्ति हेतु गुरु एवं शिष्य दोनों की उपस्थिति आवश्यक है। अतः हम कह सकते हैं कि संगीत शिक्षा-प्रणाली का इतिहास गुरु-शिष्य परंपरा का इतिहास है।

वैदिक काल :

इस काल में प्रबुद्ध ऋषियों और संगीतविदों द्‌वारा धार्मिक कृत्यों में प्रयुक्त संगीत संस्थानों के उद्‌गम एवं विकास का इतिहास सगीत पूर्णतः नियमबद्ध था।' अतः उस संगीत को संरक्षण प्रदान करने तथा अग्रिम पीड़ी तक पहुँचाने के उद्देश्य से शिक्षण की आवश्यकता होना स्वाभाविक था। इसलिए ऋत्विजों को सामगान का विशेष प्रशिक्षण मूल सामग ऋषियों द्‌वारा दिया जाना अनिवार्य था। संभवतः यहीं से संगीत शिक्षा का प्रारंभ हुआ। साम का वास्तविक स्वरूप स्वर पर आधारित है। अतः प्रारंभिक अवस्था में सामगान के रूप में वैदिक ऋचाओं के स्वरसहित पाठ का स्वरूप निर्धारित हुआ। कालान्तर में सामगान के सुस्वर पाठ की लगभग 1080 शाखाएँ व उपशाखाएँ विकसित हुई। साम गायकों की केवल तीन शाखाएँ प्रमुख थीं- कौथुमीय (गुजरात और बंग देश में), राणायनीय (महाराष्ट्र में) और जैमिनीय (कर्नाटक में)। स्वर का संगीतमूलक अर्थ ब्राह्मण काल में विकसित हो चुका था। अतः जब सामगान के विधिविधान का व्यापक प्रचार होने लगा तब धीरे-धीरे विशिष्ट प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए गुरुकुल और गुरु-आश्रम स्थापित होने लगे। इन गुरु-आश्रमों में साम की शिक्षा मौखिक रूप से ही दी जाती थी।"

साधारण रूप से वैदिक साहित्य में साम प्रशिक्षण के तीन रूप प्रचलित होने का संकेत मिलता है -

1. पिता-पुत्र के रूप में, 2. गुरु-शिष्य परंपरा के रूप में, 3. गुरुकुल में जाकर शिक्षा ग्रहण करना।

सामग पिता अपने पुत्रों को साम प्रशिक्षण देकर यज्ञों में ले जाते थे, वहाँ वे पिता द्‌वारा किये जाने वाले कर्म को सीखते थे। इससे सामों का संरक्षण भी स्वतः हो जाता था। सुनकर सीखने की परंपरा के ही कारण संभवतः वेदों को 'श्रुति' कहा गया। सामगान में निपुण व्यक्ति यज्ञ कर्म के लिये विशेष रूप से आमंत्रित किए जाते थे। अतः उनकी ख्याति अपने आप दूर-दूर तक फैल जाती थी जो स्वाभाविक ही था। फलस्वरूप उद्‌गाता वर्ग में सम्मिलित होने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति स्वतः इन आचार्यों के पास प्रशिक्षण हेतु पहुँचते थे।' संभवतः यही गुरु-शिष्य परंपरा का उदय था।सामगान का अत्यंत व्यवस्थित रूप और उसके विधि-विधान का पर्याप्त प्रसार हो जाने के कारण धीरे-धीरे विशिष्ट प्रशिक्षण की दृष्टि से प्रशिक्षण 4 केन्द्रों के रूप में गुरुकुल या गुरु आश्रमों का निर्माण होने लगा। इन आश्रमों में साम का प्रशिक्षण मौखिक रूप से ही दिया जाता था इसीलिए वेद को 'अनुश्रव' भी कहा गया। यथा-

'गुरुमुखादनुश्रूयतेइत्यनुश्रवोवेदः'।'

इस प्रकार भारतीय परंपरा की मौलिकता उसकी विद्‌याओं का मौखिक आदान-प्रदान रहा है। प्राचीन काल का पाठ्‌यक्रम वर्ण व्यवस्था, जीवन दर्शन तथा विशिष्ट लक्ष्यसंधान से नियमित हुआ करता था। विभिन्न वर्गों के लिए विभिन्न पाठ्‌यक्रम होने पर भी सामान्य रूप से पाठ्‌यक्रम का स्वरूप समान रहता था। 'गांधर्व के सामान्य शिक्षण के लिए वैकल्पिक विषय के रूप में विद्‌यामंदिरों में व्यवस्था थी किन्तु व्यावसायिक अध्ययन के लिए संगीतशाला जैसे विशिष्ट कलाकेन्द्रों में जाकर विशेषज्ञ गुरुजनों से शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती थी। अतः प्रशिक्षण का समावेश हो जाने के कारण ही सामवेद के विशिष्ट सिद्धांतों का अध्ययन करने के लिए अनेक साम-परिषदों की स्थापना हुई। 10

पौराणिक काल :

इस काल में सार्वजनिक संगीत शिक्षण की व्यवस्था थी। यद्‌यपि संगीत शिक्षण केन्द्र अधिक संख्या में निर्मित नहीं हो पाए थे, तथापि जितने भी थे वे अपना सुंदर कार्य कर रहे थे। उन संगीत शिक्षण केन्द्रों से सैकड़ों व्यक्तियों को संगीत का ज्ञान प्राप्त होता था। संगीत को वैदिक युग में जो उच्चकोटि का स्थान प्राप्त था वही स्थान इस काल में भी बना रहा।"

'हरिवंश पुराण' में श्रीकृष्ण को कुशल बाँसुरी वादक तथा रास नृत्य का प्रवर्तक माना गया है। 2

'वायु पुराण' में कहा गया है कि गंधर्व, गायन विद्‌या तथा किन्नर, नृत्य में निपुण होते थे। शिव को नृत्य का आचार्य माना गया है। तुंब, वीणा, घंटा तथा मुखादि उनके प्रिय वाद्‌य हैं।

'मार्कण्डेय पुराण' में हाहा, हुहु नारद तथा तुम्बरू का संगीत के आचार्य के रूप में उल्लेख है।14

संगीत संस्थानों के उद्‌गम एवं विकास का इतिहास |

रामायण काल :

संस्कृत भाषा में रचित पहले महाकाव्य रामायण के रचनाकार ऋषि वाल्मीकि जी के द्‌वारा आश्रम में लव कुश को स्वर, पद, ताल आदि की शिक्षा दी गई थी। जहाँ लव कुश तीर चलाने में दक्ष थे. वहीं वे कंठ संगीत में भी दक्ष थे।" इस प्रकार रामायण काल में गुरु आश्रम में रहकर गुरू-शिष्य परंपरा से ही संगीत शिक्षा प्राप्त की जाती थी।

रामायण के आधार से यह ज्ञात होता है कि राजकुमार कुश और लव गान्धर्व विद्‌या (संगीत) के विद्‌वान, स्थान (मध्य, मंद्र, तार) और मूर्छना के जानकार मधुर स्वर वाले और गंधवों के समान रूप वाले थे।"

महाभारत काल :

महाभारत में अर्जुन को गांधर्व विशारद बताया गया है। अज्ञातवास में बृहन्नला रूपी अर्जुन ने विराटराज की आज्ञा पाकर विराटसुता को गीत, वादित्र तथा नृत्य की सशास्त्र शिक्षा दी थी-

स शिक्षयामास च गीतवादितं सुतां विराटस्य धनंजयः प्रभुः॥"

इस काल में बड़े नगरों में संगीत शिक्षा के लिए संगीत शाालाओं का प्रबंध शासन की ओर से किया जाता था तथा इनके सम्यक संचालन का समुचित प्रबंध रहता था। मत्स्यराज की राजधानी में युवतियों की नृत्य शिक्षा के लिए ऐसे ही विशाल नृत्य भवन का निर्माण किया गया था।

बौद्ध काल :

संगठित शिक्षण-संस्थाओं की शुरुआत बौद्ध विहारों से हुई। इन विहारों में भिक्षु-भिक्षुणियाँ रहती थीं। किन्तु बाद में ये विद्‌या के केन्द्र बनकर उच्चकोटि की शिक्षण संस्थाओं के रूप में

उभरने लगे। धीरे-धीरे वैष्णव मंदिरों में भी शिक्षण कार्य होने लगा। भिन्न-भिन्न संप्रदायों के आचार्यों ने मठ स्थापित किए, जो वास्तव में शिक्षा के विशिष्ट केन्द्र ही थे।" बौद्ध ग्रंथों के रचनाकाल में संगीत के वैदिक तथा लौकिक दोनों पक्षों का प्रचलन था। गान्धर्व का अन्तर्भाव शिल्प में किया जाता था। शिल्पों की शिक्षा के लिए कन्दराओं के गूढ़ कूटागारों में विद्‌यालयों का निर्माण किया जाता था। तत्कालीन विश्वविद्‌यालयों में गांधर्व आदि शिल्पों के लिए पृथक विभाग

तक्षशिला विश्वविद्‌यालय":

बौद्ध काल में तक्षशिला विद्‌यादान का प्रमुख केन्द्र था। यह भारतवर्ष का प्राचीनतम विश्वविद्‌यालय कहा जा सकता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि श्री राय के भाई भरत के पुत्र तक्ष ने 'तक्षशिला नगरी' की स्थापना की थी। महाभारत के युद्ध में भी इस स्थान की विद्‌या-केन्द्र के रूप में प्रसिद्धि हो चुकी थी। 22

ईसा से पूर्व छठी-सातवीं शताब्दी में 'तक्षशिला विश्वविद्‌यालय' की कीर्ति देश-विदेश में फैल चुकी थी। भारतवर्ष के कोने-कोने से और विदेशों से विद्‌यार्थी उच्च शिक्षा को प्राप्त करने के लिए इस विश्वविद्‌यालय में आते थे। यहाँ वेद, वेदांग, अष्टादश विद्‌याएँ, दर्शन, व्याकरण, अर्थशास्त्र, राजनीति, युद्धविद्‌या, शस्त्र-संचालन, ज्योतिष, आयुर्वेद, ललित कला, हस्तविद्‌या, विविध भाषाएँ, शिल्प आदि की शिक्षा विद्‌यार्थी प्राप्त करते थे। प्राचीन भारतीय साहित्य के अनुसार पाणिनी, कौटिल्य, चंद्रगुप्त, जीवक, कौशलराज प्रसेनजित आदि महान पुरुषों ने इस विश्वविद्‌यालय में शिक्षा प्राप्त की थी। विविध विद्‌याओं के विद्‌वान आचार्यों ने यहाँ अपने विद्‌यालय तथा आश्रम बनाये हुए थे। शिष्य आचार्य के आश्रम में रहकर विद्‌याध्ययन करते थे। एक आचार्य के पास अनेक विद्‌यार्थी रहते थे। इनकी संख्या प्रायः 100 से 500 तक होती थी। अध्ययन में क्रियात्मक कार्य को बहुत महत्व दिया जाता था। क्रियात्मक अनुभव के लिए छात्रों को देशाटन भी कराया जाता था। प्राचीन साहित्य से विदित होता है कि तक्षशिला विश्वविद्‌यालय में पढ़ने वाले छात्र उच्च वर्ण के ही होते थे। 24

वाराणसी, बौद्धकाल का एक दूसरा विद्‌याकेन्द्र था, जिसमें संगीताध्यापन का एक स्वतंत्र विभाग था। नालन्दा, विक्रमशिला तथा तदन्तपुरी जैसे अन्य विश्वविद्‌यालयों में भी गांधर्व का स्वतंत्र निकाय अथवा फैकल्टी थी तथा इसके अधिष्ठाता के रूप में भारत-विख्यात संगीतज्ञों की नियुक्ति हुआ करती थी। 25

नालंदा विश्वविद्‌यालय"

नालंदा विश्वविद्‌यालय वर्तमान पटना के दक्षिण-पश्चिम में चालीस मील दूर अवस्थित था। पहले यहाँ बौद्ध विहार थे। कहा जाता है कि महाराज शकादित्य (सम्भवतः गुप्तवंशी सम्राट

कुमार गुप्त, 415-455 ई.) ने इसको विश्वविद्‌यालय के रूप में विकसित किया। तदनन्तर इनके अनेक उत्तराधिकारी राजाओं ने यहाँ अनेक विहारों और विश्वविद्‌यालय के भवनों का निर्माण कराया। इस विश्वविद्‌यालय का यश अल्प समय में ही दूर-दूर तक फैल गया। यहाँ भारतवर्ष से ही नहीं, अपितु कोरिया, चीन, तिब्बत, मंगोलिया आदि देशों के विद्‌यार्थी शिक्षा प्राप्त करने आते थे।

चीनी यात्रियों के अनुसार नालन्दा विश्वविद्‌यालय में छात्रों के रहने की बहुत सुविधा थी। यहाँ छात्रों के निवास के नियम भी कठोर थे तथा इनका कठोरता से पालन कराया जाता था। ह्वन्त्सांग के अनुसार इस विश्वविद्‌यालय में प्रवेश पाना सरल नहीं था।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र से स्पष्ट है कि नाट्‌य तथा संगीत कला को राज्याश्रय प्राप्त था। गणिका, दासी तथा नटों के गीत, वाद्‌य, नृत्य, नाट्‌य, नृत्त, वैशिक आदि कलाओं की शिक्षा देने वाले व्यक्तियों को शासन की ओर से द्रव्य दिया जाता था। इनके पाठ्‌यक्रम में वैशिकी कला के अतिरिक्त गीत. वाद्‌य, नृत्य, नाट्‌य, वीणा, वेणु तथा मृदंग की शिक्षा सम्मिलित थी। ललित कला की इन संस्थाओं का प्रवर्तन राज्य की ओर से होता था। ऐसी संस्थाओं में गणिकाओं के अतिरिक्त उनके वंशज तथा संगीत का व्यवसाय करने के इच्छुक अन्य शिक्षार्थियों को प्रवेश दिया जाता था।"

सम्राट कनिष्क के समय में देश में 'नृत्यगृह' और 'नृत्यशालाएँ' थीं जिनमें समय-समय पर संगीत के प्रदर्शन होते रहते थे। इस काल में भारतीय संगीत का संपर्क मध्य एशिया, चीन, रोम आदि देशों में भी बढ़ा। कालिदासकृत ग्रंथों तथा भास एवं शूद्रक के नाटकों में संगीत शिक्षा एवं संगीतशालाओं का वर्णन 'संगीत शाला' तथा संगीत आचार्यों का उल्लेख इस प्रसंग में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। हरदत्त, गणदास, रेभिल नामक गायक, तुम्बरू एवं नारद नामक आचार्यों का उल्लेख, संगीत शिक्षा एवं गुरु-शिष्य परंपरा का संकेतक समझा सकता है। संगीत के शिक्षकों का 'तीर्थ' के रूप में भी उल्लेख मिलता संगीतशालाओं में नियमित कक्षाएँ हुआ करती थीं एवं नित्य गृह पाठ भी दिया जाता था। संगीत शिक्षण ग्रहण करने वाली कुछ स्त्रियों का उल्लेख भी इस प्रसंप में दुष्टव्य है यथा-मालविका, परिव्राजिका एवं शर्मिष्ठा। शर्मिष्ठा ने स्वयं भी कुछ संगीत सम्बन्धित पदों की रचना की थी एवं तत्संबंधी नियमों की भी स्थापना की थी। वात्स्यायन के समय में संगीत प्रत्येक नागरिक के लिए अनिवार्य था। उस समय नगरों में संगीत शिक्षा दी ने के लिए कला भवन बने रहते थे। मालविकाग्निमित्र में इस प्रकार के एक कला भवन का उल्लेख मिलता है।" धनिक व्यक्तियों के घरों में संगीतशाला बनी होती थी, जहाँ विभिन्न वाद्‌यों का अभ्यास किया जाता था। इस प्रकार संगीत शिक्षा का प्रबंध संगीतशालाओं के द्‌वारा किया जाता था। इन शालाओं का संचालन समस्त नगर की ओर से अधवा विभिन्न व्यावसायिक गणों की ओर से होता था जहाँ संगीताचार्य संगीतकला की शिक्षा देते थे।

नागरक के पुत्रों तथा गणिकादि वर्गों को संगीत की उच्च शिक्षा दी जाती थी। इन शालाओं का पाठ्यक्रम समाप्त करने पर गणिका तथा अन्य विद्‌यार्थी न केवल जीविकोपार्जन के लिए योग्य बन जाते थे। अपितु सुसंस्कृत नागरक कहलाने के पात्र भी बन जाते थे। नागरक के सांस्कृतिक जीवन में गोष्ठियों का प्रमुख स्थान था, जिनमें साहित्य तथा संगीत के सामूहिक आयोजन सम्पन्न होते थे। अग्निमित्रम् के राजगृह में संगीतशाला थी जिसमें संगीत के विविध अंगों का अध्यापन वरिष्ठ आचार्यों की देखरेख में गुरु-परम्परा द्‌वारा किया जाता है । राजभवन के भीतर संचालित संगीत शालाओं के आचाययों को बहुमान से देखा जाता था। राजभवन में संगीत की शिक्षा का प्रबन्ध विशेष रूप से राजस्त्रियों तथा उनकी दासियों के लिये होता था। संगीतशाला में स्वर, वर्ण, गीति, मूर्छना, तान, राग, वस्तु तथा अभिनय इत्यादि की विधिवत शिक्षा दी जाती थी।

संदर्भ ग्रंथ :

1. हिन्दी पर्यायवाची कोश, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृष्ठ 627.
2. संगीत का सामाजिक शास्त्र, डॉ. सत्यवती शर्मा, पृष्ठ 86.
3. भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर, डॉ. मधुबाला सक् पृष्ठ-43.
4. भारतीय संगीत का इतिहास, शरत्चंद्र परांजपे, पृष्ठ 64.
5. भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर, मधुबाला सक्सेना, पृष्ठ
6. भारतीय संगीत का इतिहास, उमेश जोशी, पृष्ठ 85.
7. संगीत बच्चों के लिए, विनयचंद्र मौद्‌गल्य,
8. भारतीय संगीत का इतिहास, उमेश जोशी, पृष्ठ 91.
9. भारतीय संगीत का इतिहास, भगवतशरण शर्मा, पृष्ठ 91.
10. भारतीय संगीत का इतिहास, शरत्चन्द्र परांजपे, पृष्ठ 164.
11. भारतीय संगीत का इतिहास, श्री शरत्चंद्र परांजपे, पृष्ठ 171.
12. प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास, कृष्ण कुमार, पृष्ठ 440-441.
13. भारतीय संगीत का इतिहास, डॉ. शरत्वंद्र परांजपे, पृष्ठ 250-251.
14. भारतीय संगीत का इतिहास, उमेश जोशी, पृष्ठ 133.
15. प्राचीन भारत में संगीत, डॉ. धर्मावती श्रीवास्तव, पृष्ठ 284.
16. भारतीय इतिहास में संगीत, भगवतशरण शर्मा, पृष्ठ 33.
17. भारतीय संगीत का इतिहास, शरत्चंद्र परांजपे, पृष्ठ 264.
18. शास्त्रीय संगीत का विकास, अमिता शर्मा, पृष्ठ 216.
19. भारतीय संगीत का इतिहास, भगवतशरण शर्मा, पृष्ठ 35.
20. भारतीय संगीत का इतिहास, शरत्चंद्र परांजपे, पृष्ठ 482.

21. प्राचीन भारत में संगीत, डॉ. धर्मावती श्रीवास्तव, पृष्ठ 269-270.
22. भारतीय इतिहास में संगीत, भगवतशरण शर्मा, पृष्ठ 39.
23. भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर, मधुबाला सक्सेना, पृष्
24. संगीत (संगीत शिक्षा अंक), जनवरी-फरवरी (1988), गांधर्व युग में आ शिक्षा पद्धति के अनुसार शिक्षा, प्रदीप कुमार घोष, पृष्ठ 12
25. श्री मद्भगवद्‌गता यथारूप, अंतर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ, पृष्ठ 175.
26. संगीत मासिक पत्रिका, जनवरी-फरवरी 1988 (संस्थागत व गुरु शिष्य पर मध्य समन्वय की तलाश) डॉ. भालचंद्र पंचाक्षरी, पृष्ठ 43.